साहित्य संहिता

Available at http://sahityasamhita.org/

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

सूरदास की भक्ति भावना

किरन देवी

नाम किरन देवी

पिता का नाम श्री भइयालाल

जन्म तिथि 15/10/1988

जन्म स्थान चित्रकूट(उ.प्र.)

शिक्षा MA.BEd.NET(HINDI)

संप्रति सहायक प्रोफेसर,अभिनवप्रग्या महाविद्यालय हमीरपुर

भक्ति भावना के प्रथम चरण में सूरदास 'ईश्वर-भक्ति' को इस संसार में व्याप्त भय एवं ताप से बाहर निकलने का एक मात्र रास्ता मानते हैं। उनका अनुराग ईश्वर के प्रति अप्रतिम है इसलिए सांसारिकता के प्रति उन्होंने विराग भाव व्यक्त किया है। सांसारिक सुखों की निंदा करते हुए सूरदास ने सभी सांसारिक कार्यों, सुखों और अवस्थाओं को दोषपूर्ण माना है। उनका मानना था कि निष्पक्ष आंखों से देखने पर ही अपने भीतर की अच्छाईयां और बुराईयां दिखाई पड़ती हैं और खुद के प्रति बरती गयी यही इमानदारी भक्त के ह्रदय में दैन्य भाव को जगाती है। इसी कारण सूरदास के विनय वर्णित इन आरंभिक पदों में दैन्य भावों की प्रधानता है। ईश्वर के गुणों की अधिकता और उनके समक्ष अपनी लघुता का भाव उन्होंने सूरसागर के आरंभ में बार-बार प्रकट किया हैं। वे कहते हैं कि अगर उन्होंने ईश्वर-भक्ति नहीं की तो उनका इस संसार में जन्म लेना ही व्यर्थ है –

"सूरदास भगवंत भजन बिनु धरनी जननी बोझ कत मारी"

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान-सियार"

सूरदास का भक्त हृदय इतिहास और पुराण के अनेक उद्धरणों के माध्यम से भक्तों पर ईश्वरी कृपा के महत्त्व का प्रतिपादन करता है। अहिल्या, गणिका, अजामिल, गज, द्रौपदी, प्रहलाद आदि उदाहरणों के माध्यम से सूरदास यह स्थापित करते हैं कि कैसे ईश्वर अपने भक्तों पर कृपा की बौछार बरसाते हैं। सूरदास का भक्त हृदय ऐसा स्मरण कर स्वयं को संतुष्ट करता है –

"गज गनिका गौतम तिय तारी। सूरदास सठ सरन तुम्हारी।"

सूरदास का मानना था कि ईश्वर अपने भक्तों पर असीम कृपा करते हैं। इसलिए उन्होंने ईश्वर को भक्ति वत्सल और हितकारी कहा है –

"ऐसे कान्ह भक्त हितकारी, प्रभु तेरो वचन भरोसौ सांचौ।"

अपनी दुर्दशा के वर्णन द्वारा सूरदास प्रभु शरण में जाने की इच्छा बार-बार व्यक्त करते हैं –

"अबकि राखि लेहु भगवाना"

सूरदास के इस चरण की भक्ति पर संत कवियों की वाणी का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस दौर में माया से संबंधित अनेक पदों की रचना करते हुए उन्होंने माया की भर्त्सना ठीक संत कवियों जैसी ही की है। यद्यपि आगे चलकर उन्होंने निर्गुण भक्ति पर गहरा प्रहार भी किया लेकिन उनकी भक्ति भावना के निरूपण के इस आरंभिक चरण में उन पर संत कवियों का प्रभाव पड़ा। कुल मिलाकर 'संसार से विराग और ईश्वर से राग' यही सूरदास की आरंभिक दौर की भक्ति का मूल आधार रहा है जिसे उन्होंने बड़ी तल्लीनता के साथ व्यक्त किया है।

सूरदास की आरंभिक दौर की भक्ति में दैन्यभाव की बहुलता के कारण उनकी भक्ति दास्य भाव की भक्ति मानी गई, जिसमें विनय की प्रधानता के कारण भक्त ईश्वर को श्रद्धा-प्रेमपूर्वक स्वामी एवं स्वयं को दास मानकर ईश्वर की सेवा करना चाहता है। इसके अंतर्गत भक्त और भगवान का सेवक-सेव्य भाव का संबंध रहता है। इसमें भक्त हर प्रकार से अपनी दीनता व्यक्त करते हुए ईश्वर से कृपा तथा अनुग्रह प्राप्ति की कामना करता है। इस प्रकार की भक्ति निरूपण में सूरदास बहुत गहराई तक गए और इसी कारण उनके काव्य में विनय की सातों भूमिकाएं – दीनता, मानमर्षता, भर्त्सना, भय

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

प्रदर्शन, आश्वासन, मनोराज एवं विचारणा बड़े ही स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। उनके द्वारा प्रदर्शित दास्यभाव की भक्ति में तन्मयता और गंभीरता का महत्वपूर्ण स्थान है –

"बिनती सुनौ दीन की चित दै, कैसे तब गुन गावै।

मेरे तो तुमही पति तुम गति, तुम समान को पावै।

सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, को मो दुःख बिसरावै।।"

सूरदास द्वारा निरूपित भक्ति का दूसरा चरण

पुष्टिमार्गीय भक्ति से जुड़ता है। 'पुष्टि' का अर्थ है –

'भगवान का अनुग्रह।' श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के दशम अध्याय में पुष्टि को परिभाषित करते हुए कहा गया है - 'पोषणं तदनुग्रह' अर्थात ईश्वर का अनुग्रह (कृपा) ही पोषण है। देवताओं द्वारा पोषण या पुष्टिवर्धन की यह मान्यता वैदिक कालीन है। ईश्वर के अनुग्रह यानी पोषण के बिना जीव को मुक्ति नहीं मिल सकती है। ईश्वर के पोषण (अनुग्रह) को अधिक महत्व देने के कारण ही इस मत को पुष्टिमार्ग कहा जाता है। वल्लभाचार्य पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक हैं। ईश्वर अनुग्रह पूर्वक जीव को अपने सामान ही आनंदमय बना देते हैं। इस आनंदमय स्थिति की प्राप्ति ही मुक्ति है। मुक्ति की प्राप्ति के लिए भक्ति ही एकमात्र साधन है। आचार्य हरिराम मुक्तावली में पुष्टिमार्ग की सटीक परिभाषा देते हुए लिखते हैं – "समस्त विषय त्यागः सर्वभावेन यात्रा हि। समर्पण च दोहेदे: पुष्टिमार्ग स कथयते।" अर्थात्, 'जहां समस्त विषयों का सब प्रकार से त्याग हो, देहादि का पूर्ण समर्पण हो, वह पुष्टिमार्ग कहलाता है।'

पुष्टिमार्ग में भक्त का ईश्वर के साथ सुखद संपर्क बनता है। भक्त ईश्वर की लीलाओं में सब प्रकार से लीन होने लगता है और इसी कारण पुष्टिमार्गीय भक्ति में भक्त ईश्वर के सभी कार्यों में सेवाभाव के साथ उपस्थित रहता है। यह सेवाभाव दो प्रकार की होती है – नित्य सेवा और वार्षिक सेवा। नित्य सेवा दिन भर के कार्यों से जुड़ी होती है जबकि वार्षिक सेवा वर्ष के विभिन्न उत्सवों के समय की सेवा होती है। नित्य सेवा आठों धामों – मंगला (ईश्वर के जगने के समय के पद), श्रृंगार (श्रृंगार करने के समय के पद), ग्वाल (खेलते समय के पद), राजभोग (छाक के पद), उत्थापन (वन्य लीला के पद), भोग (गोपी लीला के पद), संध्या आरती (वन से आगमन के समय के पद) और शयन (सोते समय के पद) की सेवा कहलाती है जिसमें प्रमुख रूप से कृष्ण के बालरूप संबंधी का भाव व्यक्त

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 8
August 2016

हुए हैं। वात्सल्य भक्ति की इस नित्य सेवा का सूरदास ने बड़े ही मार्मिक ढंग से निर्वाह किया है। वर्सोत्सव सेवा में ईश्वर के अनेक अवतारों की जयंतियां मनाई जाती थीं। दोनों ही प्रकार की सेवा में भोग, श्रृंगार प्रसाधन और राग, इन तीनों का विशेष ध्यान दिया जाता है। ईश्वर को विभिन्न प्रकार के भोग लगवाने, समयानुसार श्रृंगार करने के साथ उसी अनुरूप कीर्तन करने के लिए ही वल्लभाचार्य ने अष्टछाप के अंतर्गत आठ भक्तों को नियुक्त किया था। सूरदास अपने भीतरी ज्ञान द्वारा ईश्वर के रूप के अनुरूप पदों की रचना और कीर्तन करने के लिए जाने जाते थे।